Ram Krishna Dwarika College, Patna

Report of Online Classes and Study materials of the Department of Political Science.

1) Annexure C

2) Study Materials

STUDY MATERIALS OF THE DEPARTMENT OF POLITICAL SCIENCE FOR B.A III

STUDY MATERIAL

OF

DR. BALIRAM SINGH

FOR

B A III

[illegible]

[illegible]

[illegible] के [illegible] राजनीतिक [illegible]

[illegible] की होती आम भारतीय [illegible]

[illegible] आतंक का [illegible] था। [illegible]

[illegible] हिंसा के रास्ते को एक [illegible]

[illegible] की बातों को मिटा [illegible]

बेकार नवयुवको को नौकरी दे [illegible]

[illegible]नीति के क्षेत्र में स्थिरता प्रदान [illegible]

मुसोलिनी ने जिन सिद्धांतो के [illegible]

[illegible] शुरू किया है आगे चलकर फासि[illegible]

फासिज्म सिद्धांत अधिनायक [illegible]

[illegible]

STUDY MATERIAL

OF

DR. RENU MOWAR

FOR

B.A III

आधार पर न करके नैतिक आधार पर किया है। यद्यपि उसने इसे आवश्यक माना है, परन्तु इसमें सुधार की माँग को दोहराया है।

प्रश्न 4 – नागरिकता के बारे में अरस्तु के विचारों का वर्णन कीजिये।

Discuss Aristotle's views on citizenship.

उत्तर– नागरिकता पर अरस्तु के विचार

(Aristotle's Views on Citizenship)

अरस्तु ने अपनी कृति 'पालिटिक्स' (Politics) की तीसरी पुस्तक में राज्य एवं नागरिकता सम्बन्धी विचार प्रकट किये हैं। वह नागरिकता की परिभाषा देने से स्वतः ही उठ खड़ा हुआ है। अरस्तु प्रश्न करता है, राज्य क्या है ? इसके उत्तर में स्वयं ही कहता है कि राज्य (Polis) बाह्य दृष्टि से नागरिकों (Politai) का एक समुदाय (Kosnonia) है।" राज्य नागरिकों के मेल से बनता है। अब प्रश्न है, नागरिक कौन है, नागरिकता से क्या तात्पर्य है ?

नागरिक की योग्यता (Illigibility of Citizens) – इस प्रकार का उत्तर पहले वह नकारात्मक (Negative) रूप में देता है। बतलाता है कि कौन नागरिक नहीं हो सकता। उसमें वह निम्न बातें रखता है—

(1) किसी राज्य में रहने मात्र से नागरिकता नहीं मिलती। यदि ऐसा होता तो किसी भी राज्य में रहने वाला विदेशी व्यापारी या दास भी वहाँ का नागरिक है। परन्तु उनको नागरिक नहीं माना जाता।

(2) किसी पर केवल मुकदमा चलाने का अधिकार रखने वाले व्यक्ति भी नागरिक नहीं बन सकते यदि ऐसा होता तो बहुत से विदेशी नागरिक बन जाते क्योंकि अनेक सन्धियों में उन्हें उपरोक्त सुविधा दी जाती है।

(3) यह भी आवश्यक नहीं है। नागरिकों की सन्तानों को भी नागरिकता प्रदान की जाये।

(4) इसके अतिरिक्त अवयस्कों को भी नागरिकता प्राप्त नहीं हो सकती।

(5) अतः जन्म, निवास या कानूनी अधिकार नागरिकता का मापदण्ड नहीं है।

यदि उपरोक्त नागरिक नहीं बन सकते तो प्रश्न उत्पन्न होता है कि नागरिक कौन हैं ?

नागरिक की परिभाषा – अरस्तु नागरिक की परिभाषा इस प्रकार देता है कि "नागरिक वह है जो न्याय, प्रशासन और विधि निर्माण के कार्य में राज्य के अन्दर एसेम्बली के एक सदस्य के रूप में भाग लेता है।" अरस्तु की इस परिभाषा में नागरिक तथा अनागरिक के मध्य भेद स्पष्ट होता है।

नागरिक की दो विशेषतायें (Two Characteristics of Citizen) – अरस्तु की उपरोक्त परिभाषा नागरिकों की अग्रलिखित विशेषताओं की ओर संकेत करती है—

(1) नागरिक राज्य का क्रियाशील सदस्य होते हुए भी न्यायिक प्रशासन और सार्वजनिक कार्यों में भाग लेता है।

(2) वह साधारण सभा का सदस्य होने के नाते विधायक कार्यों में भाग लेता है।

सीमित नागरिकता (Limited Citizenship) – वस्तुतः नागरिक की उपरोक्त परिभाषा तत्कालीन यूनान की परिस्थिति के अनुसार है। उस समय सभी नागरिक साधारण सभा के सदस्य होते थे। इस तरह से वर्ष में एक बार वे राज्य के उच्च अधिकारियों को चुनते थे।

हे जन से न्यायाधीश भी बनते थे। अतः वे न्यायिक एवं प्रशासनिक दोनों प्रकार के कार्य करते थे तो भी कुछ को नागरिकता के अधिकार प्राप्त न थे। इस परिभाषा को अल्पतन्त्रात्मक राज्य में ही रखना सम्भव है क्योंकि एकतन्त्र या अल्पतन्त्र में शासन तथा न्याय की शक्ति कुछ विशेष व्यक्तियों के हाथों में रहती है।

नागरिकता के लिये योग्यतायें (Qualifications for a Citizen)—इसके पश्चात् वह नागरिकता की विशेषताओं पर विचार करता है। वह श्रमिक वर्ग को नागरिकता के अधिकार नहीं देता। उसके अनुसार नागरिकता के लिये निम्न गुणों का होना आवश्यक है—

(1) **शासक एवं आज्ञापालक** (To Rule and To Be Ruled)—नागरिकता के लिये प्रथम योग्यता यह है कि नागरिक में शासन करने एवं आज्ञापालन (To rule and to be ruled) की योग्यता हो। वह मजदूरों एवं कारीगरों को इसके उपयुक्त नहीं मानता है। अतः वे नागरिक नहीं बन सकते।

(2) **व्यक्तिगत सम्पत्ति** (Personal Property)—नागरिक के लिये व्यक्तिगत सम्पत्ति का होना आवश्यक है। इसके बिना उसे अवकाश नहीं मिल सकेगा। राज्य कार्य के लिये अवकाश आवश्यक है। वह सम्पत्ति योजना को भी आवश्यक मानता है। जिसका तमाम समय दाल रोटी की व्यवस्था में लग जाता हो वह सार्वजनिक सेवा के कार्य को कैसे कर सकता है ? अतः अवकाश भी एक आवश्यक योग्यता है।

(3) **व्यवस्था का अनुभव** (Experience of Maintaining System)—व्यक्तिगत सम्पत्ति के अभाव में शासन की व्यवस्था भी ठीक प्रकार से नहीं हो सकती। जो व्यक्ति धन की व्यवस्था करता है, उसे व्यवस्था का अनुभव होता है। इस कारण भी धन रखने की योग्यता की आवश्यकता है।

(4) **श्रमिक की उपेक्षा** (Labour Class Not Included)—वह श्रमिक वर्ग को नागरिकता से वंचित रखता है, इस मामले में अरस्तु प्लेटो से ज्यादा रूढ़िवादी है।

(5) **राज्य कार्य में अभिरुचि** (Interest In State Works)—नागरिक वही होने चाहिये जो राज्य कार्य में अभिरुचि लेते हैं।

कुछ व्यक्तियों पर प्रतिबन्ध (Restrictions on Certain Persons)—अरस्तु नागरिकता के लिये कुछ प्रतिबन्ध भी लगाता है—

(1) अरस्तु के अनुसार दास नागरिक नहीं बन सकते, क्योंकि—

(i) वे सजीव सम्पत्ति के अन्तर्गत आते हैं।

(ii) वे शारीरिक श्रम करते हैं।

(iii) श्रम के पास अवकाश (Laisure) नहीं होता।

(2) जो व्यक्ति अप्राकृतिक उपायों द्वारा जैसे सूद, व्यापार आदि से धन कमाते हैं वे भी नागरिक नहीं बन सकते।

(3) श्रमिक वर्ग को भी नागरिकता के अधिकार प्राप्त न होंगे, क्योंकि उसके पास अवकाश नहीं है।

(4) स्त्रियों को भी नागरिकता के अधिकार प्राप्त नहीं होंगे क्योंकि बौद्धिक दृष्टि से उनका स्तर निम्न है। नीति-निर्धारण करने के लिये तथा न्यायिक कार्यों में भाग लेने के लिये एक उच्च नैतिक तथा बौद्धिक स्तर की आवश्यकता होती है।

(5) बच्चों को नागरिकता के अधिकार प्राप्त न होंगे।

अरस्तु एवं प्लेटो के नागरिकता सम्बन्धी विचारों की तुलना (Comparision Between The Views of Aristotle And Plato on Citizenship)

असमानतायें (Dissimilarities) – अरस्तु के नागरिकता सम्बन्धी विचार प्लेटो की तुलना में संकुचित प्रतीत होते हैं—

(1) अरस्तु के अनुसार नागरिक में शासन करने की योग्यता होनी चाहिये। इसके विपरीत प्लेटो शासक वर्ग के लिये व्यावहारिक शासन योग्यता के स्थान पर उनके ज्ञान पर अधिक बल देता है। अतः एक व्यवहार को महत्व देता है और दूसरा अपेक्षाकृत सिद्धांत को।

(2) प्लेटो के अनुसार शासन की योग्यता कुछ ही व्यक्तियों में सम्भव है परन्तु अरस्तु इसको थोड़ा विस्तृत रूप देता है।

(3) प्लेटो ने अपने ग्रन्थ 'रिपब्लिक' में दासों तथा नागरिकों के मध्य कोई अन्तर नहीं किया है। वह अपने आदर्श राज्य में अशिक्षित तथा अराजनीतिक व्यक्तियों के समूह को भी राज्य में निवास करने के कारण नागरिकता का अधिकार प्रदान कर देता है। इसके विपरीत अरस्तु एक सर्वोच्च राज्य में अशिक्षित व अराजनीतिक दासों तथा श्रमिकों को नागरिकता के अधिकार से वंचित कर देता है।

(4) प्लेटो की मान्यता है कि एक अच्छा व्यक्ति ही अच्छा नागरिक है। अरस्तु इस मत से सहमत नहीं है। उसकी मान्यता है कि एक अच्छे नागरिक और एक अच्छे मनुष्य के गुण समान हों, यह आवश्यक नहीं है।

(5) प्लेटो के अनुसार शासन की योग्यता कुछ ही व्यक्तियों में सम्भव है। इसके विपरीत अरस्तु इसे थोड़ा विस्तृत रूप प्रदान करता है।

समानतायें (Similarities) – यों तो सूक्ष्म निरीक्षण करने पर दोनों के नागरिकता सम्बन्धी विचारों में कोई विशेष अन्तर दिखाई नहीं देता। प्लेटो ने उत्पादक वर्ग को शासन कार्य से अलग रक्खा है, अरस्तु ने भी श्रमिक को नागरिकता के अधिकार नहीं दिये हैं।

अरस्तु की आलोचना (Criticism of Aristotle) – अरस्तु के उपरोक्त नागरिकता सम्बन्धी विचारों में कई कमियाँ इस प्रकार हैं—

(1) अरस्तु का नागरिकता का सिद्धान्त आधुनिक राज्य में सम्भव नहीं है। यह विचार केवल वहीं सम्भव है जहाँ प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र स्थापित हो।

(2) अरस्तु नागरिकता के लिये न्याय एवं विधायकीय कार्यों को आवश्यक मानता है। आधुनिक युग में प्रत्येक नागरिक विधायक या न्यायाधीश नहीं बन सकता।

(3) वह मजदूर एवं कारीगर वर्ग को नागरिकता से पूर्णतः वंचित करता है जो किसी को भी मान्य नहीं होगा। यह अत्यधिक सीमित दृष्टिकोण है।

(4) उसके इस सिद्धान्त के अनुसार अधिकतर जनता ही नागरिकता से वंचित नहीं हो जाती बल्कि विदेशों में बसाये इनके उपनिवेशों की जनता को भी ऐसा कोई अधिकार नहीं मिल पाता है।

(5) इसमें नागरिकता कुछ अल्पसंख्यकों की बपौती बन जाती है।

(6) धन को आवश्यकता के अधिक महत्व दिया गया है।

(7) यह अरस्तु के सावयव सिद्धान्त के भी विपरीत है, जबकि सावयव विभिन्न अंगों से मिलकर बना है। यह एक प्रमुख वर्ग को नागरिकता से वंचित कर काटकर फेंक देता है या कार्य शून्य बना देता है।

STUDY MATERIAL
OF
DR. SHAKIL AHMED
FOR
B.A III

(v) बजट, लेखांकन (accounting) तथा लेखा-परीक्षण (audit) के जो नियम अन्य सरकारी विभागों में लागू होते हैं। उन्हें नियमों को इन उद्यमों में भी लागू किया जाता है।

(vi) ऐसे उद्यमों पर सरकार की सहमति के बिना कोई भी मुकदमा नहीं चलाया जा सकता है। विभागीय संगठन की विशेषताओं की जानकारी से स्पष्ट होता है कि विभागीय प्रबन्ध व्यवस्था वाले उद्यम का संगठन पदसोपान (hierarchy) की तरह होता है। इसका प्रधान एक मंत्री होता है जो अपने कामों के लिए मंत्रिपरिषद तथा संसद के प्रति जिम्मेदार होती है। इस प्रकार, इस तरह के संगठन में सरकारी उत्तरदायित्व निश्चित हो जाता है। यह व्यवस्था प्रजातंत्रात्मक राज्य के अनुकूल है। इसका सम्बन्ध सरकार के अन्य विभागों के साथ बराबर बना रहता है। फिर भी इस तरह के संगठन की कुछ हानियाँ भी हैं। वास्तव में इस व्यवस्था को कठोर वित्त-नियंत्रण के कारण औद्योगिक स्वतंत्रता एवं स्वभाव के अनुरूप नहीं माना जाता। उपक्रम तथा परिवर्तनशीलता उद्यम के दो महत्वपूर्ण लक्षण हैं जिनका विभागीय प्रबन्ध में अभाव पाया जाता है। वास्तव में विभागीय प्रबन्ध में स्वतन्त्रता और प्रेरणा उस सीमा तक उत्पन्न नहीं हो सकती जितनी निगम

continuous

व्यवस्था (corporation system) में सम्मत है।
यही कारण है कि श्री गोरवाला (Gorwala)
ने सलाह दी कि "इस व्यवस्था का प्रयोग
नियमित रूप में न होकर कभी-कभी होना
चाहिए। यह कई प्रकार से स्वायत्तता का
पृथक नकारात्मक रूप है। यह प्रेरणा एवं
लोच का विरोध करता है। तथापि कुछ प्रकार
के उद्यमों में विभागीय प्रबंध अनिवार्य होता
है। ऐसे उद्यमों की स्पष्ट व्याख्या की जानी
चाहिए। उनको पृथक रखना चाहिए और उनकी
संख्या भी कम होनी चाहिए। श्री गोरवाला
ने प्रतिरक्षा- सम्बन्धी उद्योगों और कण्ट्रोल
राशनिंग आदि के लिए विभागीय प्रबन्ध
की व्यवस्था का ही समर्थन किया है।

(2) सरकारी निगम (Public corporation) →
सरकारी निगमों की स्थापना सार्वजनिक
उद्योगों के संचालन का एक अन्य तरीका है।
विभागीय व्यवस्था के दोषों को दूर करने के
लिए ही यह तरीका अपनाया गया है। इसकी
सबसे बड़ी व्यवस्था यह है कि इसमें व्यापारिक
स्वतंत्रता और सरकारी नियंत्रण का अभूतपूर्व
समन्वय पाया जाता है। अमेरिका के राष्ट्रपति
रूजवेल्ट के शब्दों में, निगम सरकार की शक्ति
का जामा पहने होता है।

Continuous —

सरकार के बहुत से व्यापार है जिनका संचालन निगम द्वारा किया जा सकता है। उदाहरण के लिए नदी घाटी योजना रेलवे स्टेक परिवहन योजना बीमा- व्यवस्था कोयला गैस तथा बिजली की व्यवस्था आदि। प्रायः प्रत्येक देश में इन्हीं सब व्यापारों के संचालन के लिए सरकार द्वारा निगम - व्यवस्था का सहारा लिया जाता है। यह व्यवस्था सबसे अधिक संयुक्त राज्य अमेरिका में लोकप्रिय हुई। वास्तव में अमेरिका के औद्योगिक एवं प्रशासनिक जीवन में निगमात्मक व्यवस्था इतनी घुलमिल गयी है। कि उसे अलग करना असम्भव प्रतीत होता है। वहाँ अनेक निगमों कि स्थापना की गयी है। ब्रिटेन तो निगमों की व्यवस्था का जन्म देने वाला ही देश है। अतः यहाँ भी निगमों की संख्या बहुत अधिक है। फ्रांस में भी इनकी संख्या कम नहीं है। जहाँ तक भारत का प्रश्न है। यहाँ निगमों की उत्पत्ति की कहानी पुरानी नहीं है। यहाँ शुरू में अधिकतर राज्य के नियन्त्रित उद्योगों का संचालन सरकारी विभागों द्वारा होता था। परन्तु लोककल्याणकारी राज्य की स्थापना के बाद ही यहाँ भी इस प्रथा की लोकप्रियता बढ़ती जा रही है। इस्पात, तेल, पेट्रोल, नदी - घाटी योजना इत्यादि।

Continuous -

[illegible]

(iii) इसमें निजी उद्यम की तरह प्रेरणा तथा लोच पायी जाती है। निगम व्यवस्था की व्याख्या इस प्रकार से भी की जाती है कि सार्वजनिक व्यापार तथा निजी उपक्रमों के मिश्रण होने का आभास होता है।

आधुनिक युग में यह व्यवस्था काफी लोकप्रिय होती जा रही है। ऐसे निगम की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं।

(i) निगम पर सरकार का ही पूर्ण स्वामित्व होता।

(ii) निगम का निर्माण एक विशेष कानून द्वारा किया जाता है जिसमें उसकी शक्तियाँ और विशेषाधिकारों की व्याख्या स्पष्ट कर दी जाती है।

(iii) इस निगम पर कानूनी रूप से मुकदमा चलाया जा सकता है और वह स्वयं भी मुकदमा चला सकता है।

(iv) इसकी वित्तीय व्यवस्था स्वतंत्र रूप से की जाती है।

(v) निगम को छोड़कर अन्य अभिकरणों पर लागू होने वाले बजट, लेखांकन तथा लेखा परीक्षण से सम्बन्ध कार्यविधियों से उसे बाँधा नहीं जाता है।

(vi) इसके कर्मचारी असैनिक सेवक के नहीं होते। इनके कर्मचारियों की भर्ती सेवा की शर्तें वेतन आदि का निर्धारण स्वयं निगम द्वारा किया जाता है।

continuous —

STUDY MATERIAL

OF

DR. PRABHA KUNAR

FOR

B.A III

कारण स्थिति सुधर गई, जिसके अंतर्गत राज्य अपने कर्मचारियों द्वारा की गई भूलों के लिए जिम्मेदार है। परन्तु इसके दो अपवाद हैं–

1. राज्य को उसकी सुरक्षा के लिये, सैनिक सेवाओं, श्रमिकों एवं विदेशियों के प्रशासन के लिये, अव्यवस्था को कुचलने के लिये किये गये कार्यों के लिये जिम्मेदार नहीं ठहराया जा सकता, (2) राज्य न्यायालय के सामने गुप्त आलेख प्रस्तुत करने को बाध्य नहीं है।

संयुक्त राज्य अमेरिका में कुछ स्थितियों को छोड़कर राज्य को कर्मचारियों द्वारा पहुंचाई गई हानि के लिये उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता। ये स्थितियां हैं (1) नौसेना एवं सामुद्रिक क्षेत्राधिकारी तथा (2) पोस्टमास्टर जनरल को 500 डालर तक की क्षति के दावे निर्णीत करने का अधिकार।

संयुक्त राज्य के राज्यों के बारे में भी यही स्थिति है अर्थात् किसी राज्य के विरुद्ध क्षतिपूर्ति का दावा नहीं किया जा सकता। संघ सरकार के विरुद्ध राज्य न्यायालयों में तथा राज्य सरकारों के विरुद्ध संघीय न्यायालयों में मुन्दमा नहीं चलाया जा सकता।

भारत में सरकार का दायित्व संविधान की धारा 300 के अधीन परिचालित होता है। इस धारा में यह व्यवस्था है कि भारत सरकार या राज्य सरकार के विरुद्ध मुकदमा चलाया जा सकता है। परन्तु यह मुकदमा किन स्थितियों में चलाया जा सकता है, इसका उल्लेख संसद या राज्य विधानमण्डल कानून बनाकर निर्धारित करेंगे और जब तक ऐसे कानून नहीं बनते, स्थिति वैसी होगी, जैसी इस संविधान के निर्माण से पूर्व थी। स्थिति यह है कि सरकार संविदाओं अर्थात् व्यापारिक कार्यों में राज्य को वादी बनाकर लाया जा सकता है, परन्तु क्षतिपूर्ति के मामलों में स्थिति स्पष्ट नहीं है। भारत में राज्य के दायित्व के मामलों में संप्रभु कार्यों एवं असंप्रभु कार्यों में अन्तर किया गया है। राज्य संप्रभु कार्यों उन कार्यों जो इसकी संप्रभुता के प्रयोग में किये गये हैं, के लिये उत्तरदायी नहीं है, परन्तु असंप्रभु कार्यों के बीच अंतर तर्कपूर्ण एवं एकट नहीं है। वस्तुतः भारतीय संविधान के प्रजातांत्रिक स्वरूप से राज्य की उन्मुक्ति का सिद्धान्त मेल नहीं खाता। विधि आयोग ने सिफारिश की थी कि भारत में इस विषय पर शीघ्र कानून बनाया जाये। इसने ऐसे कानून के कुछ सिद्धान्तों का भी वर्णन किया। 1965 में इस सम्बन्ध में एक अधिनियम लोकसभा में सरकार की ओर से प्रस्तुत भी किया गया, परन्तु उसे वापिस ले लिया गया और वह विधेयक न बन सका।

जिन देशों में प्रशासकीय कानून प्रणाली है वहां पदाधिकारियों के गलत कार्यों की जिम्मेदारी राज्य पर है। इन दोनों में पदाधिकारियों पर सामान्य न्यायालयों में मुकदमा नहीं चलाया जाता, बल्कि उनको प्रशासकीय न्यायालयों के सामने लाया जाता है। जब यह सिद्ध हो जाता है कि किसी राज्य अधिकारी के कार्य से किसी नागरिक को हानि हुई है तो न्यायालय उसकी क्षतिपूर्ति सरकारी कोष से किये जाने का आदेश देता है। बाद में सरकार उस अधिकारी के विरुद्ध जो कार्यवाही उचित समझे कर सकती है। परन्तु जहां तक नागरिक का सम्बन्ध है उसकी तो क्षतिपूर्ति हो ही जाती है।

इस प्रणाली के समर्थकों ने इसके निम्नलिखित गुण बतलाये हैं–

1. यह प्रशासकीय अधिकारियों को सामान्य न्यायालय के क्षेत्राधिकार से बाहर रखती है, जिससे सरकार कर्मचारी तत्परता से, निर्भय होकर तथा निपुणता से कार्य करता है।

2. यह भी कहा गया है कि न्यायाधीश केवल कानून के विशेषज्ञ होते हैं, उन्हें प्रशासन की तकनीकियों अथवा कार्यकारिणी की मजबूरियों का कोई ज्ञान नहीं होता। अतः प्रशासकीय विवाद उनके क्षेत्र से बाहर होने चाहिये। प्रशासकीय विवादों का निर्णय कानूनी दृष्टिकोण से नहीं, अपितु जनहित के दृष्टिकोण से होना चाहिए।

3. तीसरे, इस प्रणाली के अंतर्गत जनता को थोड़े खर्च पर और कम समय में निर्णय प्राप्त हो जाता है जो कानून के शासन के शासन वाली प्रणाली में सम्भव नहीं है।

फ्रांस की कौंसिल ऑफ स्टेट पूर्ण निष्पक्षता, स्वतन्त्रता एवं सुचारु रूप से कार्य कर रही है। वहां की जनता का इसके प्रति पूर्ण विश्वास है और वह इसे आदर की भावना से देखती है।

15.2.3 कानून के शासन में कुछ अपवाद

कानून के शासन वाले देशों में भी कुछ व्यक्तियों को अदालत के अभियोग और दण्ड से छूट होती है। उदाहरणतया, इंगलैण्ड के राजा या रानी को किसी मामले में प्रतिवादी नहीं बनाया जा सकता। वहां इस सिद्धान्त को कानूनी मान्यता प्राप्त है "राजा कोई गलती नहीं कर सकता।" अमेरिका में भी राष्ट्रपति जब तक पदासीन है, अभियोग से मुक्त है। उसे केवल महाभियोग द्वारा ही हटाया जा सकता है और उस पर पद से हट जाने के बाद ही मुकदमा चलाया जा सकता है। भारत में यही स्थिति राष्ट्रपति एवं राज्यपालों के सम्बन्ध में है। उन पर उनके पद की अवधि के दौरान कोई भी फौजदारी मुकदमा नहीं चलाया जा सकता। उनके विरुद्ध दीवानी कार्रवाही दो मास की नोटिस के बाद ही की जा सकती है। मंत्रियों पर यह छूट लागू नहीं होती। न्यायिक अधिकारियों को भी कुछ छूट है। उन पर उनके द्वारा किये गये निर्णयों के बारे में कोई मुकदमा नहीं चलाया जा सकता है। अन्य अधिकारियों पर, दीवानी एवं फौजदारी दोनों मुकदमे चलाये जा सकते हैं। किसी अधिकारी द्वारा, सरकारी कर्मचारी की हैसियत से किये गये कार्यों के लिये, सिविल कार्यवाही दो महीने की नोटिस देने और वह अवधि समाप्त होने के बाद ही की जा सकती है। यदि सम्बन्धित अधिकारी के गैर-कानूनी कार्यों के विरुद्ध कर्मचारी के विरुद्ध किसी सरकारी कार्य के दौरान किये गये कार्य से सम्बन्धित फौजदारी मुकदमा चलाने से पूर्व राष्ट्रपति या गवर्नर, यथावसर, की पूर्व स्वीकृति लेनी जरूरी है।

15.2.4 असाधारण न्यायिक उपचार

सरकार या इसके अधिकारियों पर मुकदमा चलाने के न्यायिक उपचार के अतिरिक्त नागरिकों को सरकारी कर्मचारियों की ज्यादतियों के विरुद्ध निम्नलिखित असाधारण उपचार भी उपलब्ध है।

1. बन्दी प्रत्यक्षीकरण—हैबियस का शाब्दिक अर्थ है शरीर को प्रस्तुत करना। यह एक लेख है जो न्यायालय आदेश के रूप में जारी करता है जिसमें किसी गिरफ्तार किये गये व्यक्ति को अपने सामने पेश करने के लिये कहा जाता है ताकि अदालत यह जान सके कि सम्बन्धित व्यक्ति को किन कारणों से गिरफ्तार किया गया है और यदि उसकी गिरफ्तारी के उचित कारण न हों तो उसे छोड़ दिया जाय। इस लेख का उद्देश्य यह पता करना है कि कोई आदमी कानूनी तौर पर गिरफ्तार किया गया है या नहीं या उसकी स्वाधीनता छीनने का कानूनी अधिकार है या नहीं। दूसरे शब्दों में, यह नागरिकों की स्वाधीनता का शक्तिशाली रक्षक है।

बंदी प्रत्यक्षीकरण किसी भी नागरिक को अधिकार रूप में प्राप्त है, यह न्यायालय की मर्जी पर निर्भर नहीं है। यदि इस बात का प्रमाण है कि किसी व्यक्ति की स्वाधीनता गैर-कानूनी तौर पर छीनी गई है तो अदालत को बन्दी प्रत्यक्षीकरण का लेख जारी करना पड़ेगा। यह एक विचित्र बात है कि हमारे संविधान द्वारा भारत को सर्वप्रभुता सम्पन्न लोक-तंत्रात्तमक गणराज्य घोषित करने तथा मौलिक अधिकारों पर एक लम्बे अध्याय को देने के बाद संसद तथा राज्य विधानमण्डलों को व्यक्तियों को नजरअंदाज करने के लिये कानून पास करने का अधिकार देता है। यह वस्तुत: नागरिक की स्वतंत्रता के अधिकार पर एक बहुत बड़ी सीमा है कि निवारक नजरबन्दी कानूनी समाप्त करके अब संसद ने आंतरिक सुरक्षा अधिनियम पारित कर रखा है जो एक काफी कठोर कानून है। निवारक नजरबन्दी कानून के अन्तर्गत नागरिकों को जो सुरक्षाएं प्राप्त थीं वे अब मीसा के अंतर्ग प्राप्त नहीं हैं। भारत में आंतरिक संकटकालीन परिस्थिति की घोषणा के बाद मीसा का खुलकर प्रयोग कि गया। वास्तव में एक प्रजातान्त्रिक देश में निवारक नजरबन्दी कानून या मीसा की कोई जरूरत नहीं होनी चाहि क्योंकि ये जनता की स्वतन्त्रता में बाधक होते हैं परन्तु इनसे बचा भी नहीं जा सकता क्योंकि हमारे देश में भी बहुत से समाजविरोधी तत्व हैं। उनके द्वारा समाज के कल्याण को या राज्य की सुरक्षा को कोई खतरा पहुंचे, इसके लिये यह जरूरी है कि उन्हें निवारक नजरबन्दी कानून के अंतर्गत गिरफ्तार रखा जाय।

2. परमादेश लेख—मैण्डस का शब्दार्थ है आदेश या आज्ञा। यह सक्षम अधिकार वाले किसी साम न्यायालय द्वारा किसी व्यक्ति, निगम या निचली अदालत को कोई ऐसा कार्य करने के लिए दिया गया आ है जो कार्य उनकी कर्त्तव्य सीमा में आता है और जिसे उन्हें पूरा करना चाहिये। संक्षेप में, सरकारी अधिव

को जारी किया गया वह लेख जिसमें उसे अपना कोई ऐसा कर्तव्य पूरा करने के लिये कहा गया है जो उसने अब तक पूरा नहीं किया। यह लेख एक अधिकारी के रूप में नहीं मांगा जा सकता है। इसका जारी करना या न जारी करना बिल्कुल अदालत के विवेक पर निर्भर है और यदि अदालत यह महसूस करती है कि कोई वैकल्पिक उपचार उपलब्ध है तो वह इस लेख को जारी किया जा सकता है।

1. प्रथम, आवेदन को यह प्रमाणित करना पड़ेगा कि जो कार्य वह कराना चाहता है वह वैध एवं न्यायोचित है।

2. दूसरे, यह अधिकार एक सार्वजनिक अधिकार है और सार्वजनिक कर्तव्य द्वारा ही इसे यथाविधि लागू करने की मांग की गई है।

3. तीसरे, आवेदन को कानूनी अधिकार होना चाहिये जिससे वह उस कार्य को करा सके।

4. चौथे, आवेदन उसी व्यक्ति का होना चाहिये जिसके अधिकार को क्षति पहुंची है।

5. आवेदन-पत्र तब उपस्थित किया जाना चाहिये जब पहले सम्बन्धित व्यक्ति से कहा जा चुका हो और उसने आवेदित कार्य करने से इंकार कर दिया हो। परन्तु इस शर्त का कठोरता से पालन नहीं होता है और न्यायालय इसको छोड़ भी सकता है।

3. निषेधाज्ञा—निषेधाज्ञा एक न्यायिक लेख है जो किसी उच्च न्यायालय द्वारा अपने से निचले न्यायालय को कोई ऐसा कार्य करने से रोकने के लिये जारी किया जाता है जो कार्य उसके अधिकार क्षेत्र से बाहर है। इस प्रकार यह लेख निचले न्यायालय को कोई ऐसा काम करने से इंकार करता है जिसे करने का उसे अधिकार नहीं है। इस लेख की अधिकार के रूप में मांग की जा सकती है। निषेध और परमादेश में अंतर है। प्रथम, निषेध लेख की मांग अधिकार के रूप में की जा सकती है परन्तु परामादेश की नहीं। द्वितीय, परमादेश किसी सरकारी पदाधिकारी या प्राधिकरण के विरुद्ध प्राप्त किया जा सकता है जबकि निषेध लेख केवल न्यायिक या अर्द्धन्यायिक अधिकरणों के विरुद्ध किया जाता है। यह विशुद्ध रूप से प्रशासनिक या विधायी प्राधिकरणों या कार्यों के विरुद्ध उपलब्ध नहीं हो सकता। तीसरे, निषेध के लिये वह आवश्यक नहीं कि सम्बन्धित व्यक्ति का हित उसमें शामिल हो, किन्तु परमादेश के लिये अभ्यर्थी को अपना निजी अधिकार सिद्ध करना होगा।

इस प्रकार निषेध लेख प्रशासकीय न्यायाधिकरणी के कार्यों पर नियन्त्रण रखता है परन्तु सामान्य प्रशासन पर इसका कोई नियन्त्रण प्रभाव नहीं है।

4. परमादेश—व्यादेश लेख न्यायालय द्वारा किसी व्यक्ति को कोई काम करने या न करने का आदेश देने के लिये जारी किया जाता है। इसे आज्ञाकारी कहा जाता है जब इसके द्वारा प्रतिवादी को कोई काम करने के लिये आवेदन दिया जाता है तथा तब किसी प्रतिवादी को कोई काम करने से मना किया जाता है तो इसे निवारक व्यादेश लेख कहते हैं। इस प्रकार आज्ञाकारी व्यादेश परमादेश से मिलता-जुलता प्रतीत होता है, क्योंकि दोनों ही अभ्यर्थी को कुछ-न-कुछ करने का आदेश देते हैं। किन्तु इन दोनों में अंतर है। परमादेश गैर-सरकारी लोगों के विरुद्ध जारी नहीं किया जा सकता है। पुनः निवारक व्यादेश निषेध से मिलता है किन्तु इन दोनों में यह अंतर है कि निषेध लेख केवल न्यायिक अधिकरण के विरुद्ध उपलब्ध है जबकि व्यादेश कार्यापालिका के अधिकारियों के विरुद्ध लेख है।

5. उत्प्रेषण—सरशियोरारी का शाब्दिक अर्थ है—प्रमाणित करना, निश्चय करना। उत्प्रेषण लेख उच्च न्यायालय द्वारा किसी निचले न्यायालय को दिया गया निदेश है जिसमें निचले न्यायालय से यह कहा जाता है कि वह अपने यहां विचाराधीन मामले की कार्यवाही के रिकार्ड को भेज दे ताकि उस मामले पर अपेक्षित कार्रवाई की जा सके जो निचले न्यायालय में सम्भव नहीं है। उत्प्रेषण लेख निषेध से मिलता जुलता है परन्तु यह निषेध लेख से कुछ अधिक है। निषेध लेख केवल निवारक होता है जबकि उत्प्रेषण लेख निवारक और उपचारी दोनों होता है। निषेध में किसी निचली अदालत को मुकदमा सुनने से रोका जाता है जबकि उत्प्रेषण लेख के आधार

पर ऊपर की अदालत निचली अदालत की कार्रवाई और आदेश रिकार्ड मंगवा सकती है और उनकी वैधता की जाँच करने पर यदि सम्बन्धित आदेश को अधिकार-क्षेत्र से बाहर पाती है तो उसे रद्द कर सकती है।

6. अधिकारपृच्छा—को वारंटो का शाब्दिक अर्थ है क्या अधिकार या प्राधिकार है ? अधिकार पृच्छा लेख किसी अदालत द्वारा यह देखने के लिए जारी किया जाता है कि कोई पार्टी जिस पर यह विशेषाधिकार का दावा कर रही है वह कहां तक वैध है और यदि उसका दावा वैध नहीं है तो उसे रद्द घोषित कर दिया जाया। इस लेख के लिए आवश्यक शर्त यह है कि जिस पद के बारे में विवाद है वह संविधान द्वारा या संविधान द्वारा स्थापित किया गया हो और वह पद सरकारी पद हो, गैर-सरकारी नहीं। दूसरे, पद का कार्यकाल स्थायी हो और उसे इच्छा से समाप्त न किया जा सकता। तीसरे, संबंधित व्यक्ति वस्तुत: पद पर आसीन रहा हो और विवादग्रस्त पद का उपभोक्ता हो। चौथे, यह आवश्यक नहीं कि अभ्यर्थी ही संबंधित पद का एकमात्र दावेदार हो। कोई व्यक्ति चाहे वह पद में सीधे अभिरुचि रखता हो या नहीं, इस लेख के लिए आवेदन कर सकता है। अपना दावा सिद्ध करने की जिम्मेदारी अभ्यर्थी अपना अधिकार सिद्ध कर देता है तो उसे पदासीन घोषित कर दिया जाता है या पद को रिक्त घोषित कर दिया जाता है।

भारत के नये संविधान में सर्वोच्च न्यायालय को निदेश, आदेश या बन्दी प्रत्यक्षीकरण, परमादेश, अधिकार पृच्छा और उत्प्रेषण के लेख नागरिकों के मूल अधिकारों की सुरक्षा हेतु जारी करने की शक्ति दी गई है। उच्च न्यायालयों को भी अपने क्षेत्राधिकार की सीमाओं के अन्दर मूल अधिकारों को लागू करने या अन्य किसी प्रयोजन के लिए किसी व्यक्ति या प्राधिकरण को निदेश देने, आदेश या लेखा जारी करने का अधिकार दिया गया है। इस प्रकार सर्वोच्च न्यायालय का अधिकार इस संबंध में काफी व्यापक है क्योंकि वह परम्परागत लेखों के अतिरिक्त अन्य आदेश, आज्ञाएं तथा लेख भी जारी कर सकता है जिनको वह किसी अमुक मामले में आवश्यक समझे। दूसरे, ये लेख सरकार के विरुद्ध भी जारी किये जा सकते हैं जबकि इंगलैण्ड में इनको केवल व्यक्तियों के विरुद्ध ही जारी किया जा सकता है। तीसरे, उच्च न्यायालयों की शक्ति इस बारे में सर्वोच्च न्यायालय की शक्ति से विस्तृत है। सर्वोच्च न्यायालय केवल संविधान के भाग तीन में दिये गये मौलिक अधिकारों को लागू करने के लिये ही लेख जारी कर सकता है जबकि उच्च न्यायालय मौलिक अधिकारों को लागू कराने के अतिरिक्त अन्य प्रयोजनों के लिये भी लेख जारी कर सकता है।

15.2.5 न्यायिक नियन्त्रण की समस्याएं

कानून के शासन के अधीन उपलब्ध उपर्युक्त न्यायिक उपचार सरकारी निरंकुशता या शक्ति के दुरुपयोग के विरुद्ध एवं नागरिकों के अधिकारों तथा उनकी स्वतन्त्रताओं की रक्षा करने में प्रभावी नियन्त्रण की व्यवस्था करते हैं। परन्तु न्यायिक नियन्त्रण की कुछ सीमाएं हैं।

1. सर्वप्रथम सभी प्रशासनिक कार्य न्यायिक नियन्त्रण के अधीन नहीं होते। बहुत से ऐसे प्रशासनिक कार्य हैं जिनके पुनरीक्षण के लिये संविधान कानूनी अदालतों को आज्ञा नहीं देता। पुन: विधानमण्डल में भी कुछ ऐसी प्रवृत्ति देखी जाती है कि वह कानून द्वारा कुछ प्रशासनिक कार्यों को न्यायपालिका के अधिकार क्षेत्र से बाहर रखना चाहता है।

2. दूसरे, जो प्रशासकीय कार्य न्यायालय के अधिकार-क्षेत्र में है उनमें भी अधिकारियों की ज्यादतियों के संबंध में न्यायपालिका अपनी ओर से कुछ नहीं कर सकती है। वह केवल किसी ऐसे व्यक्ति की प्रार्थना पर हस्तक्षेप कर सकती है जो संबंधित प्रशासनिक कार्य से प्रभावित हुआ है या जिसके प्रभावित होने की आशंका है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि प्रशासनिक ज्यादतियों के बहुत थोड़े से मामले ही पहुंच चुके होते हैं। मानव प्रकृति ऐसी है कि वह कानून के चक्कर में फंसना नहीं चाहती। मनुष्य कचहरी के चक्कर में फंसने के बजाय मामूली सा अन्याय सहना अधिक पसन्द करता है।

3. तीसरे, न्यायिक प्रक्रिया बड़ी धीमी और टेढ़ी-मेढ़ी होती है। इसकी तकनीकी बातें एक साधारण की समझ में नहीं आतीं और फिर उसकी क्रिया-विधि इतनी लम्बी है कि यह नहीं जाना जा सकता कि